प्रवचन–7, गाथा–17-18

'समयसार' 17-18 गाथा। यहाँ तक आया है। **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए...** यह बात ली है, भाई ! चाहे जितने व्यवहार आदि करे, परन्तु उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आत्मा की प्राप्ति पर से निरपेक्ष है; इसलिए यह सीधी बात ली है। कोई व्यवहार करे, यह करे, अमुक करे, पूजा-भक्ति करे, दया-दान पाले तो आत्मा का ज्ञान हो – ऐसा नहीं है; इसलिए सीधी बात यह ली है (कि) **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...**

और फिर... यह शब्द आया है न? संस्कृत में **ततः** शब्द है। अनुभव में प्रतीति करना – ऐसा कहते हैं। आत्मा का अनुभव करके, 'यह आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है' – ऐसी प्रतीति करना – यह श्रद्धा है। **फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** ज्ञान बिना, श्रद्धा नहीं होती। जो चीज जैसी है, वैसी ज्ञान में आये बिना, उसकी श्रद्धा-प्रतीति होती नहीं; इसलिए सबसे पहला कर्तव्य हो तो यह है। आहा...हा...! व्यवहार की सब बात छोड़कर सीधी बात की है।

और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा... आहा...हा...! यह आत्मा, आनन्द और ज्ञानस्वरूप है – ऐसी ज्ञान में प्रतीति हुई तो इस प्रतीति में ऐसा आया... प्रतीति में ऐसा आया कि इस आत्मा में आचरण करने से, आत्मा का आचरण करने से (अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा)। व्यवहार आचरण करने से (छूटा जायेगा – ऐसा नहीं कहा)। (व्यवहार आचरण बीच में) आता है परन्तु वह जानने योग्य है। आदरणीय तो (स्वयं का आत्मा है)। **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...** आहा...हा...!

चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द प्रभु, सकल निरावरण, पूर्ण अखण्ड, उसका ज्ञान करके श्रद्धा में ऐसा आया... श्रद्धा में ऐसा आया! कि इस आत्मा का आचरण करने से कर्मों से छूटा जा सकेगा; दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से कर्म से छूटने की विधि नहीं है। आहा...हा...! है? **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...**

(अर्थात्), यह आत्मा आनन्दस्वरूप (है), इस आनन्द (स्वरूप का) आचरण करना। सूक्ष्म बात है! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा (है), इस आनन्द का आचरण करना, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, यह आत्मा का आचरण है। आहा..हा...! देह की जड़ आदि की क्रिया, यह आत्मा का आचरण है नहीं। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम, यह भी आत्मा का आचरण है नहीं। आहा...हा...! है? **उसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा और फिर...** (अर्थात्), ऐसी प्रतीति ज्ञान से हुई **और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए...**

आत्मा, आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका अनुचरण करके आचरण करना चाहिए। उसकी आवश्यक क्रिया (यह है कि) अन्तर में रहना – चिदानन्दस्वरूप में आचरण करना, वह चारित्र है। चारित्र कोई व्रत आदि परिणाम का नाम चारित्र नहीं है, आहा...हा...! कठिन बात आयी!

उसके **....अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;...** भगवान-आत्मा, शुद्ध चैतन्यघन को दृष्टि में लेकर उसका आचरण (करना चाहिए)। निमित्त का आचरण नहीं, राग का आचरण नहीं; त्रिकाली ज्ञायक का आचरण करने से कर्म से छूटेगा – ऐसी प्रतीति करके अन्तर में अनुभव में आचरण करना। आहा...हा...! ऐसी बात है! यह चारित्र! चारित्र कोई देह की क्रिया या व्रत, नियम, तप की क्रिया, यह कोई चारित्र नहीं।

चारित्र तो ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप भगवान का आचरण (अर्थात्), अन्दर में एकाग्रता होना, (वह चारित्र है)। यह आचरण करने से ही कर्म से छूटेगा; इसके सिवाय दूसरे कोई आचरण से कर्म से नहीं छूटेगा। है? फिर **अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;...** आहा...हा...! चैतन्य का सम्यक्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, फिर उसी में लीन होना चाहिए। अतीन्द्रिय आत्मा में लीन होना चाहिए – यह चारित्र है। आहा...हा...!

क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप... साध्य (अर्थात्), यहाँ ध्येय की बात नहीं है। ध्येय तो आत्मा! ध्येय तो आत्मा है, परन्तु साध्य है, वह मोक्ष अवस्था है। दोनों में अन्तर है। समझ में आया? ध्येय (अर्थात्), यह तो पहले कहा कि आत्मा को जानना (फिर) श्रद्धान करना, यह ध्येय है। अब यहाँ साध्य (तो यह कहते हैं कि) इस आत्मा का

आचरण करने से साध्य जो मोक्षदशा (है वह), उससे प्राप्त होती है। आत्मा की मोक्षदशा, यह साध्य (है); ध्येय नहीं (ध्येय तो आत्मा है)। ध्येय और साध्य में पूर्व–पश्चिम जितना बड़ा अन्तर है।

ध्येय तो द्रव्यस्वभाव लेना और साध्य (अर्थात्), उसका आचरण करने से साध्य (जो) निष्कर्म अवस्था – सिद्ध अवस्था (प्रगट होती है) यह साध्य है। है? आहा...हा...! **साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप...** आहा...हा...! आत्मा का पूर्ण अभेद(स्वरूप प्रगट) हो जाना, यह साध्य की अवस्था – मोक्ष की अवस्था है। है? **सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है,...** (अर्थात्), मुक्ति की इस प्रकार से उत्पत्ति है; दूसरे कोई प्रकार से मुक्ति की उत्पत्ति है नहीं। इस प्रकार पहले उसका निर्णय करना चाहिए। आहा...हा...!

मुक्ति, अर्थात् सिद्धदशा – साध्य। ध्येय नहीं; ध्येय द्रव्य है परन्तु पर्याय में स्वरूप का आचरण करने से साध्य (जो) निष्कर्म अवस्था (है, वह) उससे प्राप्त होती है, आहा...हा...! भाषा बहुत संक्षिप्त, (है), किन्तु भाव बहुत गम्भीर है! आहा...हा...!

निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप, उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है... इस प्रकार मुक्ति की उत्पत्ति है। मोक्ष की उत्पत्ति इस प्रकार से है; **अन्यथा अनुपपत्ति है।** अनेकान्त किया। आत्मा, आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप (है), उसको जानकर, श्रद्धा करके, उसका आचरण करना, वह निष्कर्म अवस्था (अर्थात्), सिद्धि का कारण है। निष्कर्म अवस्था(रूप) सिद्धि का यह कारण है; दूसरा कोई कारण है नहीं।

यह सब बाहर का करते हैं न? (तो कहते हैं कि) बाहर का हो, यह जानने योग्य है; अन्दर में आदरने योग्य नहीं। आहा...हा...! पञ्च कल्याणक महोत्सव में जो कोई क्रियाकाण्ड होता है, वह सब जानने योग्य है, आदरने योग्य नहीं। निष्कर्म अवस्था(रूप) सिद्धि की उत्पत्ति, आत्मा का आनन्द का आचरण करने से होती है; अन्यथा उसकी उत्पत्ति होती नहीं।

(इसी बात को विशेष समझाते हैं –) विशेष समझाते हैं। **जब आत्मा को, अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ...** क्या कहते हैं? आत्मा में पर्याय में रागादि के अनेक प्रकार के भेद दिखते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि काम,

क्रोध आदि के भेद जो दिखते हैं, इसके साथ **मिश्रितता होने पर...** (अर्थात्), पर्याय में विकार की मिश्रितता होने पर भी, आहा...हा...! **सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता...** (अर्थात्), राग से भिन्न करना, वह भेदज्ञान (है), आहा...हा...! क्रियाकाण्ड का राग बीच में आता है परन्तु उससे भेद करना। आहा...हा...! है?

अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप... (अर्थात्) रागादि अनुभव में आते हैं, अन्दर पर्याय में विकार आदि शुभाशुभभाव आते हैं। (उन) **भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी...** (अर्थात्), पर्याय में आनन्द का भी अनुभव और राग का भी अनुभव (है) – ऐसा मिश्रितपना अनुभव में आता है, फिर भी, **सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से...** अन्दर में राग से भिन्न करने के भेदज्ञान में चतुराई (अर्थात्), प्रवीणता (से) (अर्थात्), 'विकल्प –मात्र पर है और मैं निर्विकल्प आनन्दस्वरूप हूँ' – ऐसे भेदज्ञान में प्रवीणता से। आ...हा...हा...! बात तो 17-18 गाथा (में) यह है।

– जो यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ – (अर्थात्), मैं तो इस आनन्द का अनुभव करनेवाला, यह मैं हूँ। अनुभूति में साथ में जो राग आता है, यह मेरी चीज नहीं। उससे भिन्न अपना अनुभव करना – भेदज्ञान करना, यह आत्मा का आचरण है। राग की क्रिया बीच में आती है, उसका भेदज्ञान करना और आत्मा का अनुचरण करना, यह मुक्ति का उपाय है। आहा...हा...!

(– 'जो यह अनुभूति है) सो ही मैं हूँ' – ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ... आहा...हा...! रागादि (मैं) नहीं। आनन्द और ज्ञानमूर्ति मैं आत्मा हूँ – ऐसा आत्मा का अनुभव (होना) और राग के भाव से भिन्नपना होने पर, अपने आत्मज्ञान की प्राप्ति (करता) हुआ। वहाँ आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई; राग की नहीं। राग का तो भेद(ज्ञान) करके, आत्मा की प्राप्ति–उत्पत्ति हुई। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है! हिन्दी में तो आज दूसरा (दिन) है न! कल से तो गुजराती चलेगा। धनकुमार सेठ ने कहा था तो दो व्याख्यान (हिन्दी में) आये। हिन्दी वैसे बहुत कठिन नहीं है, थोड़ा ध्यान रखे तो समझ में आता है।

कहते हैं कि आत्मा की ज्ञान की पर्याय में रागादि की क्रिया मिश्रितपने दिखने पर, राग से भिन्न आत्मज्ञान करके, आत्मज्ञान का अनुचरण करना। बीच में राग आता है, उसका अनुचरण नहीं करना। आहा...हा...! ऐसी बात है!

ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, इस आत्मा को जैसा जाना है... (अर्थात्), आत्मा जैसा है (अर्थात्), शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दकन्द, अनाकुल आनन्द का पूर – ऐसा आत्मा है, (ऐसा जाना)। राग के मिश्रितपने को छोड़कर ऐसे आत्मा का ज्ञान हुआ... **जैसा जाना है, वैसा ही है; इस प्रकार की प्रतीति...** जैसा आत्मा का ज्ञान हुआ, उस प्रकार की प्रतीति तब (हुई)। आत्मा का ज्ञान हुआ, तब प्रतीति (हुई)। एकदम प्रतीति अपने आप (हो जाये) – ऐसा नहीं। जो चीज देखी नहीं, उसकी प्रतीति क्या? जो ख्याल में ही आया नहीं (और कोई कहे कि) विश्वास करो! (लेकिन) किसका करे? राग से भिन्न होकर आत्मा आनन्दस्वरूप है – ऐसे भेदज्ञान में आत्मा आया, उसका आचरण करना, आहा...हा...! है? **जैसा जाना है, वैसा ही है; इस प्रकार की प्रतीति...**

आहा...! **प्रतीति जिसका लक्षण है – ऐसा श्रद्धान उदित होता है...** उसको समकित होता है। आहा...! धर्म की पहली सीढ़ी। आत्मा की पर्याय में जो रागादि हैं, उसका भेद करके, आत्मा का ज्ञान करके प्रतीति करना, तब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, आ...हा...हा...! इतनी सारी शर्तें हैं! गाथा बहुत ऊँची है! **श्रद्धान उदित होता है...** देखो! भाषा ऐसी ली है। राग की–विकल्प की क्रिया से भिन्न आत्मा को जानकर, उसकी श्रद्धा प्रगट होती है। **उदित होता है,** अर्थात् श्रद्धान प्रगट होता है।

(आगे कहते हैं), **तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से...** (अर्थात्), तब सब रागादि–विकल्प का कोई भी प्रकार (हो); भगवान का स्मरण, भक्ति, पूजा, व्रत आदि सब का भेद करना। वह कोई (भी) चीज अपने मोक्ष के कारण में है नहीं। आता है, होता है परन्तु उसका भेद करके... **अन्य भावों का भेद होने से...** देखो! आहा...हा...! सूक्ष्म है!

अन्य भावों का भेद होने से... (अर्थात्), पुण्य–पाप के विकल्प से आत्मा को भिन्न (करने से)। **अन्य भावों का भेद होने से निःशङ्क स्थिर होने में...** शङ्का बिना – निःसन्देह (रूप से) स्वरूप में स्थिर होने से। क्योंकि अन्य भाव का भेदज्ञान तो हुआ (और) अन्य भाव से भिन्न भगवान में स्थिर होने से, अन्तर में आत्मा के आनन्द में स्थिर होने से। **निःशङ्क स्थिर होने में समर्थ होने से...** क्या काम (हुआ)? राग से अपना आत्मा

भिन्न देखा तो अपने में स्थिर होने का सामर्थ्य प्रगट हुआ। राग से –विकल्प से अपने को भिन्न जाना, तब आत्मा में स्थिर होने की ताकत प्रगट हुई।

जब तक राग को अपना मानते हैं, तब तक मिथ्यादृष्टि में अपने स्वरूप में स्थिर होने की शक्ति–सामर्थ्य प्रगट होती नहीं। आहा...हा...! मार्ग यह है! बाकी सब व्यवहार की अनेक बातें आये। निःशङ्क स्थिर होने से (अर्थात्), राग से भिन्न भगवान देखा तो निःशङ्क आत्मा में स्थिर होने से। शङ्का नहीं है कि यह राग भी कुछ सहायता करेगा। राग–विकल्प आता है, वह मदद करेगा – ऐसी शङ्का छूट गयी। निःशङ्क स्थिर होने से!

अपने स्वरूप में – ज्ञायक भगवान चिदानन्द में निःशङ्क स्थिर होने में समर्थ होने से, **आत्मा का आचरण उदय होता हुआ...** यह आत्मा का आचरण (उदय) हुआ, अर्थात् चारित्र हुआ। आहा...हा...! यह आत्मा का आचरण! लोग सदाचरण कहते हैं, वह लौकिक नीति का सदाचरण है। यह निश्चय सदाचरण है। सदाचरण, अर्थात् सत् आचरण। सत्य आत्मा – सत्चिदानन्द प्रभु! उसको राग से भिन्न करने से अन्दर में स्थिर होने की ताकत प्रगट होती है। आहा...हा...! ऐसी बात है! भभूतमलजी! सूक्ष्म बात है, भाई!

ऐसा प्रगट होने से (इस प्रकार) **आत्मा का आचरण उदय होता हुआ, आत्मा को साधता है।** वह आत्मा को साधता है। बाहर की क्रियाकाण्ड से आत्मा का कोई साधन होता है – ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

ऐसे साध्य आत्मा की,... साध्य, अर्थात् मुक्तिदशा! मोक्ष – साध्य! **ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।** इस प्रकार से उसकी उत्पत्ति है। मोक्ष की दशा की इस प्रकार से उत्पत्ति है; दूसरे प्रकार से मोक्ष की उत्पत्ति है नहीं। आहा...हा...! राग से भिन्न होकर, आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है – ऐसा ज्ञान होकर प्रतीति हुई कि इस आत्मा में आचरण करने से ही मैं कर्म से छूटूँगा। फिर आत्मा का अनुचरण करना, आत्मा का आचरण करना – आत्म-आचरण! राग–दया, दान आदि आत्मा का आचरण नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है! **सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।** मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति इस विधि से होती है; दूसरी विधि है नहीं – यह अनेकान्त है। दूसरी विधि से भी हो और आत्मा की विधि से भी हो, उसको अनेकान्त कहते हैं – ऐसा नहीं; वह तो फूदड़ीवाद है।

अनेकान्त तो यह कहता है कि आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र(से) अनुकरण करने से – आत्मा का आचरण करने से (मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति होती है; अन्य विधि से नहीं)। सदाचरण यह है। सत् ऐसा आत्मा। सत्, अर्थात् त्रिकाल प्रभु! उसका आचरण करने से मुक्ति की उत्पत्ति होती है; अन्यथा उत्पत्ति होती नहीं। आहा...हा...! अब यह मुद्दे की बात आयी है; इसलिए थोड़ी उतावली से ले लिया। विशेष (बात) इसमें है।

श्रोता : आज हिन्दी में और कल गुजराती में!

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, अब क्या होता है! पहले यह कहा कि आत्मा की सिद्धि की उत्पत्ति इस विधि से होती है। ऐसा न होने पर दूसरा आचरण करने से (अर्थात्), राग – दया, पूजा और भक्ति आदि का आचरण करने से मुक्ति होती है – ऐसा है नहीं। बीच में आता है – राग आदि आता है परन्तु उसका भेद करने से आत्मा का आचरण होता है। उसके साथ अभेदता रखकर, आत्मा का आचरण होता है और उसको साथ में रखकर मुक्ति की प्राप्ति होती है – ऐसा है नहीं, आहा...हा...! समझ में आया?

परन्तु... (अर्थात्), ऐसी बात है तो भी, आहा...! भगवान तो अन्दर विराजते हैं, उसका ज्ञान करने से और प्रतीति करने से और प्रतीति में भी इस आत्मा का आचरण करने से मुक्ति होती है – ऐसी प्रतीति आती है; फिर आत्मा का आचरण करना। दया, दान, व्रत आदि व्यवहार आचरण है, वह मुक्ति का कारण नहीं; वह बन्ध का कारण है। आहा...हा...! भजन, स्तुति आदि सब राग का कारण है। आहा....! समझ में आया? भगवान का भजन, भक्ति और भगवान का गुणगान करना, यह सब विकल्प हैं; उससे भेद करना, यह आत्मा का आचरण है। ये साथ में रखकर आत्मा का आचरण है – ऐसा है नहीं। आहा...हा...! अब यह बात थोड़ी समझने की सूक्ष्म आती है, सुनो!

ऐसा होने पर भी, ऐसा कहा न? **परन्तु...** ऐसा है न? आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित आत्मा का आचरण हो तो मुक्ति की उत्पत्ति होती है – ऐसा है, **परन्तु...** ऐसा क्यों नहीं हुआ? अनादि काल से ऐसा क्यों नहीं हुआ? यह '**परन्तु**' कहकर कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... आ...हा...हा...! ऐसा अनुभूति – आनन्द की अनुभूति(स्वरूप)! है? **ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान....** देखो! 'भगवान' (कहकर) बुलाया!! आहा...हा..! आत्मा को 'भगवान' कहकर बुलाया! (इसी ग्रन्थ की) 72 गाथा में भी 'भगवान' कहा है, बहुत जगह 'भगवान' कहा है! **ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी,...** आहा...हा...! अब खूबी थोड़ी यहाँ है!

ऐसा आत्मा, सब प्राणी को अपनी ज्ञानपर्याय में ऐसा आत्मा अनुभव में आता है। ध्यान रखना थोड़ा! **ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** है? **आबालगोपाल...** आबाल, अर्थात्, बालक से लेकर वृद्ध.... बालक से लेकर वृद्ध; सब आत्मा को उसकी पर्याय में यह आत्मा अनुभव में आता है! क्या कहा? अज्ञानी को भी उसकी ज्ञान की पर्याय में, पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से, (आत्मा अनुभव में आता है)। है ज्ञान की पर्याय! भले अज्ञानी की है, (यहाँ तो) सबकी बात है। बालक से लेकर वृद्ध – सब जीव को ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा (अनुभव में आ रहा है)। **सबके अनुभव में सदा... 'सबके'** और **'सदा'** दो शब्द पड़े हैं। क्या कहा? आहा...हा...! ऐसा भगवान आत्मा आनन्द की अनुभूतिस्वरूप प्रभु, सबको – सब प्राणी को – सब आत्मा को सदा... आहा...हा...! है?

सबके... अनुभव में... सदा... स्वयं ही... 'स्वयं ही' अर्थात्, यह आत्मा जो अनुभूतिस्वरूप है – ऐसा आत्मा... सब प्राणी को... पर्याय में... अनुभव में आता है। आहा...हा...! क्या कहा? यह क्या कहा? रायचन्दभाई! झवेरचन्दभाई! सब प्राणी को ऐसा अनुभव आता है – ऐसा कहते हैं! अज्ञानी को भी उसकी ज्ञान की पर्याय में, पर्याय जो अवस्था है, उसमें स्व-पर प्रकाशक (ज्ञान की पर्याय में स्व-पर प्रकाशक) शक्ति होने से पर्याय, पर को तो जानती है परन्तु अज्ञानी की पर्याय भी (स्व को जानती है)। सबको (कहा इसमें) कोई बाकी नहीं (रहा), उसमें तो अभव्य भी आ गया! आहा...हा...! अभव्य मिथ्यादृष्टि एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय अथवा बालक से वृद्ध, सबको अपनी पर्याय में इस भगवान का अनुभव होता है। **सबको... सदा... स्वयं** – तीन शब्द पड़े हैं। आहा...हा...!

यह मुद्दे की बात आयी! क्योंकि आत्मा की पर्याय का ऐसा स्वभाव है (अर्थात्), स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है।

ज्ञान की पर्याय में – अज्ञानी की पर्याय में भी, सब जीव को सदा... सदा (कहा)! उसकी ज्ञान की पर्याय सदा रहती है। सब जीव को ज्ञान की पर्याय सदा रहती है। इस पर्याय में समस्त जीव को सदा स्वयं आत्मा (अर्थात्), अपनी चीज जो है, वह ज्ञान की पर्याय में अनुभव में आती है। झवेरचन्दभाई! क्या कहा?

श्रोता : अनुभूति शब्द, अर्थात् द्रव्य या पर्याय?

समाधान : पर्याय में अनुभव में आता है किन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! पहला पैराग्राफ जल्दी लिया, उसका कारण यह था कि यह दूसरा (पैराग्राफ) एकदम समझ में आये।

श्रोता : अनुभूति का अर्थ यहाँ पर्याय लेना या द्रव्य लेना?

समाधान : पर्याय... पर्याय में द्रव्य का अनुभव है। पर्याय में द्रव्य का अनुभव है! क्योंकि ज्ञान की पर्याय है, तो ज्ञान की पर्याय का स्व–पर प्रकाशक स्वभाव है; इस कारण से सब जीव को पर्याय में द्रव्य का अनुभव है।

श्रोता : अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...!

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, पर्याय में है!

श्रोता : अनुभूति त्रिकाल या वर्तमान?

समाधान : त्रिकाल! त्रिकाल जो है, वह उसकी पर्याय में (अनुभव में) आता है! आहा...हा...! अनुभूतिस्वरूप भगवान कहा न? **'अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा'** ऐसे कहा न? (अर्थात्), अनुभव में आनेवाला भगवान आत्मा! आहा...हा...! आज सूक्ष्म बात है, भाई! यह पद एकदम ले लिया, आज हिन्दी में पूरा होनेवाला है न? आहा...हा...!

चैतन्य भगवान! अनुभूतिस्वरूप भगवान यहाँ तो (कहा है)। अनुभूति, भगवान को कहते हैं। परन्तु यह अनुभूतिस्वरूप भगवान, पर्याय में जानने में आता है। है?

आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा... अनुभूति(स्वरूप) अनुभव में सदा **स्वयं ही...** 'ही' शब्द रखा है। अपनी पर्याय में अपना आत्मा ही जानने में आता है। आ...हा...हा...! धीरे से समझना! बापू! यह तो भगवान के घर की बात है! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा की यह दिव्यध्वनि है! दिव्यध्वनि में ऐसा आया। 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' भव्य प्राणी होता है, वह संशय का छेद कर देता है। कैसे? आहा...हा...! सब प्राणी को पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, अनुभव में सदा (आता है)। यहाँ तो पर्याय में अनुभव में आता है (– ऐसा कहा है)! आ...हा...हा...! क्या कहा, समझ में आया?

सब प्राणी को – अज्ञानी को भी... आ...हा...हा...! कसाई जीव को भी, अभव्य जीव को भी... आ...हा...हा...! अनन्त संसारी आत्मा को भी... आहा...हा...! पर्याय की ताकत इतनी है कि ज्ञान की पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान **सदा... सर्वदा... सर्व को... स्वयं...** अनुभव में आता है। आहा...हा...! धन्नालालजी! गाथा आपने लिखी है न! हमारे झवेरचन्दभाई ने लिखी है न...! पहले ये थे न....वाले थे। खीमजीभाई! आहा...हा...! शान्ति से सुनने जैसी बात है, बापू!

भगवान आत्मा... अनुभूतिस्वरूप प्रभु अन्दर है, अनुभव में आने योग्य (है)। सदा सर्व जीव को स्वयं – जो आत्मा स्वयं है, वही पर्याय में अनुभव में आता है। आ...हा...हा...! **'स्वयं ही'** ऐसे कहा है। अकेला **'स्वयं'** शब्द नहीं लिया है। स्वयं ही– अकेला आत्मा ही पर्याय में जानने में आता है! आहा...हा...! **आने पर भी...** अब लेना है। पर्याय में आत्मा का अनुभव होने पर भी... आहा...हा...! उसकी नजर वहाँ गयी नहीं है, इसकी नजर वहाँ गयी नहीं है! नजर, पर्याय में – राग में फिरती है। समझ में आया? आहा...हा...! 17-18 गाथा अलौकिक है!! आहा...!

लोग व्यापार करते हैं न? तब ऐसा कहते हैं कि रुपये में कितनी कमाई हुई? सत्रह आने, अठारह आने, सवाया या डेढ़ गुना? ऐसा कहते हैं न? भगवानजीभाई! हमारे यहाँ दुकान थी, वहाँ भी चलता था, बारह महीने में रुपये में अठारह आने पैदा हुए... बारह महीने में व्यापार में अठारह आने (पैदा) हुए। हमारे यहाँ भी ऐसा चलता था। यहाँ तो कुछ ज्यादा

ही चलता है! यह तो वतन की बात है न! 'पालेज' तो गुजरात का गाँव है न! आहा...हा...!

श्रोता : यहाँ तो गाथा 31 और 32 डबल है!

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आता है देखो! अभी तो चार दिन बाकी है न! आहा...हा...! 32 वीं गाथा नहीं ली है, 31 और 38 (गाथा) ली है।

यहाँ कहते हैं प्रभु! शान्ति से सुनने जैसा है, प्रभु! यह तो अलौकिक बात है! अन्यत्र कहीं सुनने मिले नहीं – ऐसी बात है! आहा...हा...! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव, मुनियों को समझाते थे, वह मुनि अपनी वाणी से जगत को बताते हैं! सुन तो सही, प्रभु! तेरी पर्याय में इतनी ताकत है! तेरी वर्तमान ज्ञान की पर्याय भले अल्प है तो भी हम कहते हैं कि इतनी ताकत है कि उस पर्याय में द्रव्य ही जानने में आता है! आ...हा...हा...हा...! भगवानजीभाई! पर्याय में भगवान जानने में आता है! पुत्र–पुत्री, पैसा और राग (जानने में नहीं आता) – ऐसा कहते हैं! आहा...हा...!

ऐसा होने पर भी, ऐसा कहा न? **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** ऐसे लिया न? आ...हा...हा...! उसकी दृष्टि उस ओर नहीं है। अनादि से दृष्टि, पर्याय ऊपर और राग ऊपर है। पर्याय में सारा आत्मा जानने की ताकत होने पर भी, पर्याय में स्वयं अनुभव में आता है – ऐसा होने पर भी, उसका लक्ष्य स्वभाव ऊपर नहीं जाने से, उसका लक्ष्य एक समय की अवस्था अथवा राग पर जाने से, अनुभव में आने पर भी, उसको अनुभव में आता नहीं। समझ में आया?

फिर से – आहा...! जोरदार बात है, प्रभु! कान में सुनने मिले, वह भी भाग्यशाली हो उसे मिले, ऐसा है। ऐसी यह बात है, यह कोई साधारण ऐसे–वैसे की बात नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा की दिव्यध्वनि में बात आयी, (उसके) सन्तों ने आगम रचे और दुनिया को समझाया। आहा...हा...! समझ में आया?

इस भगवान आत्मा की पर्याय में, अर्थात् ज्ञान की दशा में, ज्ञान की दशा का स्वभाव ऐसा है कि सारा अनुभूतिस्वरूप भगवान, उसकी पर्याय में अनुभव में आता है। ऐसा आया न? देखो! 'अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा' यह तो पहले आत्मा को कहा। बाद में 'आबालगोपाल' (कहा)। आबालगोपाल, अर्थात् बालक से वृद्ध – छोटे से बड़े

– बालक, स्त्री, कन्या, वृद्ध – सब भगवान आत्मा हैं ! अन्दर में तो भगवान पूर्णानन्द है। सबको... आहा...हा... ! 'सबके' ऐसा है न? 'आबालगोपाल' का अर्थ समझे? बालक से लेकर वृद्ध–समस्त जीव को ! ओ...हो...हो... ! **सबके अनुभव में सदा...** अनुभव में... सबको और सदा... आहा...हा... ! चन्दुभाई ! यहाँ वजन दिया है।

सबको... सदा... स्वयं आत्मा... पर्याय में स्वयं आत्मा ही जानने में आता है – ऐसा कहते हैं ! आहा...हा... ! ऐसा अभी तो सुना भी न हो ! आहा...हा... ! भगवान ! भगवान, भगवान को कहते हैं ! ! आहा...हा... ! प्रभु ! तेरी चीज तो अनुभूति–भगवानस्वरूप है न ! आहा...हा... ! लिखा है न अन्दर? **अनुभूतिस्वरूप भगवान** कहा है ! किसे? प्रत्येक को (कहा है)। प्रत्येक आत्मा अन्तर अनुभवस्वरूप भगवान आत्मा (है) ! आ...हा...हा... ! सब भगवान आत्मा (हैं) ! सब जीव को सदा स्वयं अनुभूति(स्वरूप) भगवान आत्मा, पर्याय में अनुभव में आता है। आहा...हा... ! लक्ष्मीचन्दभाई ! ऐसी बातें पैसे में मिले – ऐसा नहीं है।

श्रोता : नाईरोबी के अहोभाग्य कि आप की वाणी सुनने मिली !

पूज्य गुरुदेवश्री : आ...हा...हा... ! बापू ! वीतराग त्रिलोक के नाथ सर्वज्ञदेव विराजते हैं, उनके पास से आयी हुई बात है। आहा...हा... ! भगवान, भगवान को कहते हैं ! भगवान, भगवान को कहते हैं – हे भगवान आत्मा ! आ...हा...हा... ! प्रभु ! तू तो अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा है न ! आ...हा...हा... ! तू राग और पुण्यरूप है ही नहीं न, नाथ ! आहा... ! तो देह की क्रिया, वाणी की क्रिया, विषय का संग, स्त्री का संग, शरीर का संग – यह चीज तो बहुत दूर रह गयी ! वह तो तेरे में है ही नहीं। आहा...हा... ! तेरे में रागादि होने पर भी, राग से भिन्न भगवान, राग का ज्ञान करनेवाली पर्याय, राग को जानती है परन्तु पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान जानने में आता है। आ...हा...हा... ! समझ में आया?

सब जीव को सारा भगवान अनुभूति प्रभु... सदा... उसकी पर्याय में, अर्थात् वर्तमान दशा में स्वयं अनुभव में आता है। आ...हा...हा... ! ऐसा होने पर भी, (अर्थात्), वस्तु तो ऐसी है, आहा...हा... ! फिर भी... आहा...हा... ! है न? **अनादि बंध के वश,...** अनादि से राग के वश हो गया है। ऐसे देखे तो (अन्दर में देखे तो) भगवान अनुभव में आता है, परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं करके; राग, पुण्य, दया–दान, काम–क्रोध के अनादि बन्ध के

वश पड़ा हुआ; अबन्धस्वरूप अनुभव में आने पर भी, उस पर दृष्टि नहीं (है) तो 'मैं राग हूँ' – ऐसा मानकर मिथ्यादृष्टि भटकते हैं। आहा...हा...! धीरे से समझना! थोड़ा कठिन पड़े तो रात को पूछना! आहा...हा...! एक पंक्ति में तो कितना भरा है!! आहा...हा...!

श्रोता : बिल्कुल प्रयोग की गाथा है, गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोग करना! यही करना है! करना हो तो यही करना है; इसके बिना सब 'एक के बिना शून्य' है। आहा...हा...! बाहर की सब प्रवृत्ति होती हो... हो उसके कारण से, तेरे में तो उस समय में राग होता है परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि राग से भिन्न करके, आत्मा का अनुभव करना। ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान, राग के काल में भी, पर्याय में अनुभव में आता है, क्योंकि पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है। ज्ञान की पर्याय का – अवस्था का वर्तमान में स्वभाव ऐसा है कि त्रिकाली को अनुभव में लेती है – ऐसा स्वभाव ही है। आहा...हा...! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म पड़े... (किन्तु) समझने की बात यह है। मुद्दे की रकम तो यह है।

कोई आदमी कहे न कि 'ब्याज तो बहुत खाया, लेकिन मुद्दे की रकम तो लाओ!' तो कहे, 'रकम है नहीं!' अरे...! तब तो क्या हुआ? पहले तो बारह आना में (पैसे ब्याज पर) देते थे। हमारे वहाँ भी सेठ लोग थे, वे राजा को दो–दो लाख, आठ आना के (ब्याज पर) देते थे। इन दिनों में बढ़ गया। मुझे तो दूसरी बात कहनी है। बीस साल तक ब्याज खाया, बाद में कहा कि 'मुद्दे की रकम लाओ!' सामनेवाला कहे 'मुद्दे की रकम है नहीं!' अरे...रे...! अकेला ब्याज खाकर क्या हुआ, मुद्दे की रकम तो समाप्त हो गयी। आहा...हा...! ऐसे अनादि से दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में रुकने से, मुद्दे की रकम पड़ी रही। ब्याज खाया, रकम पड़ी रही! आहा...हा...! ऐ ई...! ....भाई! एक पंक्ति में तो बहुत भरा है।

अनुभूतिस्वरूप आत्मा, आबालगोपाल सब जीव को (अनुभव में आ रहा है) – ऐसा परमात्मा कहते हैं! सबको... अनुभव में... सदा... स्वयं ही, (ऐसे) शब्द पड़े हैं। अकेला 'स्वयं' शब्द नहीं पड़ा है। स्वयं ही, उसकी ज्ञान की पर्याय में आत्मा ही आता है। आहा...हा...! सब आत्मा को, पर्याय में स्वयं त्रिकाली अनुभूति(स्वरूप) भगवान ही

जानने में आता है, परन्तु लक्ष्य उस तरफ नहीं। अनुभव में आने पर भी, लक्ष्य उस तरफ नहीं (है), आ...हा...हा...! है?

अनादि बंध के वश... (अर्थात्), अनादि राग और पुण्य के वश से उसको देखने में रुक गया, उसको करने में रुक गया; भगवान अनुभूतिस्वरूप अनुभव में आने पर भी, लक्ष्य उस तरफ नहीं होने से, राग का लक्ष्य होने से, राग का अनुभव होने से, जानने की चीज जानने में नहीं आयी। आहा...हा...! जिसकी पर्याय है... जिसकी पर्याय है, उसमें पर्यायवान जानने में आता है (किन्तु) उस पर्याय ने उसको जानने में नहीं लिया। जानने में आता है, फिर भी जानने में नहीं लिया और जो जिसमें नहीं – ऐसे राग को जानने में रुक गया। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है, प्रभु!

आहा...! 'भगवान' (कहकर) तो बुलाते हैं! आहा...हा...! मुनिवरों, 'भगवान आत्माओं' – ऐसा कहते हैं! तेरे(में) कपड़े, शरीर (इत्यादि) नहीं; तेरे में पुण्य-पाप राग (होता) है, वह भी तू नहीं। तुम तो भगवान आत्मा हो न नाथ! अनुभूति में आने योग्य है न! अरे...! पर्याय में अनुभव तो होता है न! आ...हा...हा...!

श्रोता : जमी....!

पूज्य गुरुदेवश्री : जमी...? पर्याय में अनुभूति होती है न! आहा...हा...! अनुभूतिस्वरूप भगवान तो है ही! अनुभूतिस्वरूप भगवान तो है ही, परन्तु तेरी पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान (अनुभव में) आने पर भी, तेरा लक्ष्य उस तरफ होता नहीं; तेरा लक्ष्य राग और बन्ध के वश हो जाता है। अबन्धस्वरूप अनुभव में आता है, उस तरफ दृष्टि नहीं करके, बन्धस्वरूप राग में तेरा लक्ष्य है तो अबन्धस्वरूप अनुभव में आता है, उसका अनादर कर देते हैं, आ...हा...हा...! गजब बात है, प्रभु!

श्रोता : एक पंक्ति में तो कमाल हो गया!

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाल है...! कमाल है...!! इसलिए एक पंक्ति उतावली से ली नहीं। सेठ ने कहा था न धनकुमार सेठ ने कि 'हिन्दी में लो!' तो दो घण्टा (हिन्दी में चला)। हिन्दी में यह सार आया! भाई! सार में सार आया है!! आहा...हा...!

आहा...हा...! पार नहीं तेरे (गुणों का)! अनन्त... अनन्त... गुण का नाथ, जिसमें

अनन्त (गुण की) संख्या पड़ी है – ऐसा अनुभूति (स्वरूप) भगवान द्रव्य.... आहा...हा...! सदा... सबको (अनुभव में आता है)। ऐसी बड़ी चीज, अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, सदा सर्व को स्वयं ही अनुभव में आता है। पर्याय में, स्वयं भगवान है, वही अनुभव में आता है; सबको आता है! आहा...हा...! ऐसा होने पर भी, **अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से...** आ...हा...हा...! उसको विकल्प–राग उठता है, उसके साथ एकत्वबुद्धि हो गयी है।

ज्ञान में सारी चीज अनुभव में आने पर भी, राग में एकत्वबुद्धि हो गयी है तो अनुभव में आता है, (उसके साथ) अनादि से एकत्वबुद्धि छूट गयी है, आहा...हा...! ऐसा कैसा उपदेश!? परन्तु इसमें हमें क्या करना? ये करोड़ों रुपये का बड़ा धन्धा करना (या ये करना)? दस–दस, बीस–बीस लाख के कपड़े और पचास लाख के कपड़े (लेना)! सारा दिन 'धन्धाखोर' (धन्धा करता रहता है)! 'धन्धाखोर'!

भगवान आत्मा...! कहते हैं कि तेरी पर्याय में – हथेली में अनुभव में आता है – ऐसा कहते हैं! हथेली में तो ऐसे नजर करनी पड़े... आहा...हा...! किन्तु (यहाँ तो) तेरी पर्याय में सारा आत्मा अनुभव में आता है!! भगवान सारा अनुभव में आता है परन्तु तेरा लक्ष्य उस पर नहीं। आहा...हा...! **अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ...** देखो! यहाँ (मूढ़) शब्द कहा! आहा...! एक ओर 'भगवान' कहा, एक ओर 'मूढ़' कहा! आहा...हा...! अन्तर में भगवान को नहीं देखते हैं और राग की दशा में एकत्वबुद्धि है, वे मूढ़ प्राणी हैं।

जानने की चीज जानने में आती है, उसकी तरफ दृष्टि नहीं और जो कुछ उसकी चीज नहीं, उसके साथ एकत्वबुद्धि होने से ज्ञान वहाँ रुक गया है। तेरा ज्ञान वहाँ राग में रुक गया है; इसलिए तेरे ज्ञान में भगवान जानने में आता है, फिर भी राग में रुकने से, भगवान तेरे ख्याल में नहीं आता। आहा...हा...! ...लालजी! बात ऐसी है, भगवान! कभी सुनी न हो ऐसी! बाहर में ही बाहर में... हो... हा... हो... हा...! 'धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रह्यो दूर' 'धर्म के नाम से धमाधम चली और यह रहा दूर'! आहा...हा...! मूढ़! एक ओर 'भगवान' कहा और एक ओर 'मूढ़' कहा!

जिस पर्याय में भगवान दिखने में आता है – ऐसा आत्मा तुम नहीं जानते हो और राग के साथ एकत्वबुद्धि हो गयी। बस! एक राग किया तो मानो ओ...हो...हो...! हमने तो बहुत किया! (ऐसा मानता है)। अभी तो यहाँ शुभराग की बात है; अशुभराग के साथ तो एकत्वबुद्धि है, वह तो तीव्र है, परन्तु शुभराग के साथ एकत्वबुद्धि है – ऐसे मूढ़ को, **अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' – ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता....** अन्तर्दृष्टि करता नहीं और दिखने में आता है, फिर भी (वहाँ) दृष्टि नहीं (है) तो उसको आत्मज्ञान उत्पन्न नहीं होता। राग की एकताबुद्धि से अज्ञान उत्पन्न होता है। आहा...हा...!

ऐसे (आत्मज्ञान की) उत्पत्ति नहीं होने से, **उसके अभाव से, अज्ञात का श्रद्धान, गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** अज्ञान के कारण, जैसे गधे के सींग नहीं है तो ऐसी श्रद्धा (नहीं हो सकती), (वैसे) आत्मा जानने में आया नहीं तो श्रद्धा कैसी? आहा...हा...! **गधे के सींग के श्रद्धान समान है; इसलिए श्रद्धान भी उदित नहीं होता...** ऐसे जीव को समकित नहीं होता। आहा...हा...! **तब समस्त अन्य भावों के भेद से आत्मा में निःशङ्क स्थिर होने की असमर्थता के कारण, आत्मा का आचरण उदित न होने से...** उसको आत्मा की श्रद्धा नहीं होती, आत्मा का ज्ञान नहीं होता (और) आत्मा का आचरण नहीं होता। **इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।** साध्य जो आत्मा है, उसकी सिद्धि और उत्पत्ति नहीं (होती)। संसार की उत्पत्ति है, (साध्य की) सिद्धि नहीं।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)